RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल. 0011/2012-14

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 70 अंक : 7
सृष्टि संवत् 1960853114
19 मई 2013
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष–70, अंक : 7, 16/19 मई 2013 तदनुसार 5 ज्येष्ठ सम्वत् 2070 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

अमृतदर्शन का अर्थ है-आत्मविवेक

-ले० आचार्य भद्रसेन शालीमार नगर, होशियारपुर

यह शरीर, इसकी बाहर-अन्दर की इन्द्रियां तथा सांसें जिस की चेतना, प्रेरणा से कार्य करती हैं, वह आत्मा है। यह अजर-अमर आत्मा ही शरीर का अधिष्ठाता तथा संचालक है।

हम जब बोलते हैं तो बोलते समय सब से पहले बोलने की इच्छा होती है। तब आत्मा जो कुछ कहना चाहता है, उसको बुद्धि द्वारा सोचता है और उसके लिए फिर मन को प्रेरित करता है। मन शरीर में व्याप्त विद्युत (अग्नि) को प्रेरित करता है, इससे वायु प्रकट होती है, जो कि पहले छाती में घूमती है, फिर मुख के कण्ठ, तालू, दन्त, मूर्धा आदि स्थानों से टकरा कर उस-उस स्थान से उच्चारित होने वाले वर्ण के रूप में सुनाई देती है।[1]

हमारे बाह्य व्यवहार का एक और स्पष्ट उदाहरण है, कि जैसे जब हम कोई चीज़ खाते हैं, तो खाते समय दान्त और जिह्वा अपनी-अपनी क्रिया करते हैं, तब स्वाद से पता चलता है, कि इसमें इस-इस चीज़ का स्वाद या मेल है। यथा रसगुल्ले खाते समय हाथ से उसका स्पर्श, आंख से उस की आकृति, रूप, रंग, जिह्वा तथा दांतों से मीठे, पनीर का पता चलता है और मन इन सबकी तथा कला की आन्तरिक अनुभूति करता-कराता है या चटनी चाटने पर पुदीने, प्याज, खट्टास (अनारदाना, अम्बी या इमली), नमक, मिर्च का अनुभव होता है। ऐसे ही जब हम अपने जीवन व्यवहार पर विचार करते हैं, तो विचार से स्पष्ट होता है कि इस व्यवहार में यह अंश या यह कार्य शरीर द्वारा होता है और यह अन्त: करण के माध्यम से होता है। जैसे कि जाग्रत अवस्था में सारी इन्द्रियां मन से जुड़कर अपना-अपना कार्य करती हैं। स्वप्न अवस्था में बाहर की इन्द्रियां सो जाती हैं, तब मन ही पूर्व व्यवहार के आधार पर अपना व्यापार करता है और सुषुप्ति = गाढ निद्रा में मन भी सो जाता है, तब केवल आत्मा और प्राण भी जागते हैं।

अत: जीवित अवस्था में हमारा रूप आत्मा, मन और इन्द्रियों के मेल के रूप में होता है। इसलिए कठ उपनिषद[2] के ऋषि ने कहा है-आत्मा, इन्द्रियों और मन के मेल से ही हमारा सारा जीवन व्यवहार चलता है। इसी की पुष्टि करते हुए न्यायदर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन मुनि ने लिखा है, कि नित्य आत्मा के किसी शरीर इन्द्रियों और बुद्धि आदि से जुड़ने का नाम ही जन्म है।[3]

शरीर के अन्दर चेतना अनुभव कराने वाले आत्मा का परिचय देने के लिए भारतीय दर्शनों में विशेष प्रयास किया गया है। जिस बात को वेद-मन्त्रों और उपनिषदों में उपदेश के रूप में बताया गया है, उसी को दर्शनों में युक्तिपूर्वक घटा कर समझाया जाता है। जैसे कि किसी को किसी चीज़ का स्पष्ट अनुभव कराया जा रहा हो। ऐसे ही विविध दर्शनों में आत्मा का भी अनुभव कराया जाता है। इसीलिए कहा जाता है[4] कि वेद-वाक्यों से अध्यात्म तत्त्व का श्रवण करना चाहिए और सुने हुए का उत्पत्ति = जचाव, युक्ति, तर्क के द्वारा दर्शन प्रक्रिया से मनन = विचार करना चाहिए और फिर मनन के अनुसार अनुभव करना चाहिए। यही किसी के दर्शन का ढंग है।

आज के सत्संग का उपसंहार करते हुए महात्मा जी ने कहा-पिछले दो सत्संगों की चर्चा से स्पष्ट होता है, कि अमृत शब्द अनेक अर्थों में आता है। यहां इसका अर्थ जीवन, जीवित है और जीवन या जीवित अवस्था जिन-जिन के सहयोग से होती है, वे सब उस-उस अपेक्षा से अमृत कहलाते हैं। जीवन का केन्द्र बिन्दु आत्मा है और वह अजर-अमर हैं। अत: अमृत शब्द आत्मा के लिए पूर्ण रूप से जचता है। आत्मा की अमरता का अनुभव करना ही अमर होना है। इस अनुभव की अनुभूति दर्शनों की प्रक्रिया से सरलतापूर्वक होती है। अत: दर्शनों के आधार पर आत्मा की चर्चा अगले सत्संग में करेंगे।

चौथा सत्संग

अमृत की चर्चा को पूरी तरह से समझने के लिए इस सत्संग में भी काफी श्रोता आए हैं। अमर ने अमृत को कहा, कि हमारी चर्चा खूब हो रही है। तभी अनुराग ने कहा-अमृत शब्द में ऐसा आकर्षण भरा है, कि प्रभात से ही इसके गीत प्रारम्भ हो जाते हैं।

---

1. आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
   मन: कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥
   मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्। पाणिनीयवर्णोच्चारण शिक्षा
2. आत्मन्द्रियमनोयुक्तं मोक्तेल्याहुर्मनीषिण: 1,3,4
   ऐसा ही चरक में कहा है-शरीरेन्द्रियसत्त्व (=मन:) आत्मसंयोग:
   सूत्र-1, 42 सत्त्वात्मा शरीरं च-1, 46
3. पुनरुत्पत्ति: प्रेत्यभाव: न्याय 1, 1, 19 सूत्र पर भाष्य-उत्पन्नस्य क्वचित् सत्त्वनिकाये मृत्वा या पुनरुत्पत्ति: स प्रेत्यभाव:। उत्पन्नस्य सम्बद्धस्य। सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियबुद्धिवेदनाभि: पुनरुत्पत्ति: पुनर्देहादिभि: सम्बन्ध: (वात्स्यायन)।
4. श्रोतव्य: श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभि:।
   मत्त्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतव:॥
   ऐसे ही (न्याय) दर्शन की उपयोगिता को बताते हुए वात्स्यायन मुनि ने लिखा है कि दर्शन किसी धर्म के सिद्धान्तों को समझा कर स्पष्ट करता है और तब बात हस्तामलकवत स्पष्ट हो जाती है। तभी तो कहा है-
   प्रदीप: सर्वविद्यानामुपाय: सर्वकर्मणाम्।
   आश्रय: सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तित॥ वात्स्यायन भाष्य 1, 1, 1
   तथा-इमास्तु चतस्रो विद्या: पृथक् प्रस्थाना: प्राणमृतामनुग्रहायोपदिश्यन्ते। यासां चतुर्थीयमान्वीक्षिकी न्यायविद्या। तस्या: पृथक् प्रस्थाना: संशयादय: पदार्था:। तेषां पृथग्वचनमन्तरेणां ऽऽध्यात्मविद्यामात्रमियं स्यात्। यथोपनिषद: वात्स्यायन भाष्य। (शेष पृष्ठ 6 पर)

एक वाक्य क्या नहीं कर सकता

-खुशहाल चन्द्र आर्य गोविन्द राम एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड, कोलकाता

मेरे प्यारे देश का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी व्यक्ति द्वारा कहा गया एक वाक्य इतिहास को बिगाड़ भी सकता है और इतिहास को सुधार भी सकता है। एक देशी कहावत है कि ''एक चना क्या भाड़ फोड़ सकता है'' परन्तु इतिहास इसके विपरीत है। वैसे तो इतिहास में अनेकों उदाहरण ऐसे मिलते हैं, पर मैं यहां पर कुछ प्रसिद्ध उदाहरण ही प्रस्तुत करता हूं।

1. माता सीता द्वारा कहा गया एक वाक्य-जब श्री राम चन्द्र जी को अपने पिता दशरथ द्वारा दिए गए रानी कैकई को तीन वचनों के आधार पर श्री राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास जाना पड़ा, जब श्री राम, सरयू नदी को पार करके एक भीषण जंगल में एक कुटिया बनाकर रह रहे थे, तब वहां विलक्षण घटना घटी। उस कुटिया के चारों तरफ राक्षसों का ही वास था। वहां राक्षसों के राजा रावण का ही प्रभुत्व था। सभी राक्षस राजा रावण के अधीन थे। रावण जब सीता के स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था और सीता ने श्री राम के गले में माला डाल दी थी, तभी से रावण ने सीता को हरण करने की इच्छा बना रखी थी। यहां उसको एक बहाना भी मिल गया कि रावण की बहन शूर्पनखा श्री राम या लक्ष्मण से विवाह करना चाहती थी। जब इन दोनों ने उसके प्रस्ताव को इन्कार करके उसका अनादर कर दिया, दूसरे शब्दों में उसकी नाक काट दी यानि किसी की बात न मानना ही उसकी नाक काटना होता है। तभी से शूर्पनखा श्री राम से क्षुब्ध थी और उसने अपने भाई रावण को अपनी नाराजगी बताई और सीता को हरण करने की पूरी रूप-रेखा भी बता दी। रावण ने भी यह एक अच्छा अवसर देखकर अपने एक आज्ञाकारी राक्षस मारीच जो मायावी था और रूप बदलने में बड़ा प्रवीण था। उसको अपने पास बुलाया और उसको एक स्वर्ण रंग का हिरण बनकर सीता के आगे से निकलने को कहकर आगे की पूरी योजना बता दी। इस योजना के अनुसार मारीच स्वर्ण रंग का हिरण बनकर सीता के सामने से निकला और वह हिरण सीता के मन को भा गया। उसने श्री राम से कहा-पतिदेव! आप इस हिरण को हो सके तो जीवित पकड़ कर ले आओ ताकि में इसे बच्चे की तरह पाल-पोस कर मन बहलाव करूं और यदि जीवित पकड़कर नहीं आए तो इसे मार कर ले आओ ताकि हम इसकी खाल को मृग छाला के रूप में काम ले सकें। श्रीराम ने सबसे बड़ी भूल यह की कि सीता के कहने से बिना कुछ सोचे-विचारे ही धनुष-बाण लेकर उस हिरण के पीछे दौड़ पड़े और हिरण मायावी था ही, उसने कुछ दूर जाकर इस प्रकार रोना आरम्भ कर दिया कि हे लक्ष्मण! मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। सीता के कान में जब यह आवाज़ आई तो वह भयभीत हो उठी और अपने देवर लक्ष्मण से कहने लगी कि तुम्हारे भाई पर कोई आपत्ति आ गई है, जाओ, तुम उन्हें आपत्ति से निकालो। लक्ष्मण ने अपनी भाभी को बहुत समझाया कि मेरा भाई श्रीराम ऐसा कमज़ोर नहीं है जो किसी आपत्ति में पड़ सके। यह कोई राक्षसों का मायावी जाल है। आप चिन्ता मत करो भाई जी थोड़ी ही देर में आ जाएंगे। पर उस समय सीता माता ने जो वचन कहे, उन्होंने पूरे इतिहास को बदल कर रख दिया। उसने इस यति-जति लक्ष्मण से कहा कि तेरे मन में पाप आ गया है। तू यह सोचता है कि भाई मर जाए तो सीता तुम्हारी हो जाएगी, पर यह कदापि नहीं होगा। लक्ष्मण जैसे महान् तपस्वी के लिए यह शब्द असहय थे और वह तुरन्त भाई जी की खोज में निकल पड़ा। आगे जो घटना घटी वह सर्व विदित है। सीता माता के इसी कटु शब्द ने रामायण की रचना कर डाली।

2. माता द्रौपदी द्वारा कहा गया कुवाच्य-यह दूसरा दृष्टान्त हमें महाभारत में मिलता है। यह युधिष्ठर ने जुआ खेलने से पहले अपना अलग राज्य हस्तिनापुर से दूर इन्द्रप्रस्थ में पांचों भाईयों ने मिलकर बना लिया। तब युधिष्ठर ने एक बहुत ही सुन्दर कलापूर्ण महल वहां बनवाया। इस महल की खूबी यह थी कि जहां पानी दिखता था वहां ज़मीन होती थी और जहां दरवाज़ा दिखता था वहां दीवार होती थी और जहां दीवार दिखाई देती थी वहां दरवाज़ा होता था। इस महल को देखने के लिए देश-विदेश के अधिकतर राजा-महाराजा आए थे। उनमें युधिष्ठर का चचेरा भाई दुर्योधन भी आया था। दुर्योधन जब महल देखने लगा तब उसे जहां पानी दिखाई देता था, तब वह धोती को उठा लेता था और जहां धरती दिखाई देती थी तब वह धोती को नीचे कर लेता था और धोती भीग जाती थी। जब उसे कहीं दरवाज़ा दिखता था तो वह चलने लग जाता था और उसका माथा दीवार से टकरा जाता था, इस प्रकार वह अपने आप में बड़ा शर्मिन्दा हो रहा था। तभी ऊपर बैठी द्रौपदी दुर्योधन को देख रही थी। द्रौपदी ने व्यंग्य करते हुए कहा कि अन्धे का अन्धा ही पैदा होता है। यह सुनते ही दुर्योधन आग बबूला हो गया और मन में ठान ली कि इसका बदला मुझे ज़रूर लेना है। वह तुरन्त वहां से आ गया। अपने मामा शकुनि से सारी बातें कही और किसी भी प्रकार इस अपमान का बदला लेने को कहा। आगे जो कुछ हुआ वह सर्वविदित है। महाभारत जैसे महायुद्ध का होना द्रौपदी के व्यंग्यात्मक कथन का ही दुष्परिणाम था।

3. चाणक्य द्वारा ली गई प्रतिज्ञा-मध्यकाल में अवध के राजा महानन्द ने चाणक्य का अपमान किया था, तब महान नीतिवान, चाणक्य ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं मगध राज्य का विनाश करके ही अपनी चोटी को बांधूगा अन्यथा खुली ही रखूंगा। इसी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए चाणक्य ने एक होनहार बालक जो अपने साथी बच्चों के साथ खेल रहा था और उसी राजा की दासी का लड़का था, उसकी योग्यता को देखकर उसको अपने पास रखकर उसे शस्त्र विद्या में निपुण किया और उसी के द्वारा महानन्द को पराजित करवाया और मगध का राजा चन्द्रगुप्त को बनाया। यथा चाणक्य के अपमान का बदला जिसके कारण मगध का महान् सम्राट मिट्टी में मिल गया।

4. गुरुवर स्वामी विरजानन्द द्वारा पूछा गया प्रश्न-सबसे अधिक यदि किसी एक वाक्य का प्रभाव पड़ा है तथा संसार को लाभ पहुंचा है, तो वह है गुरुवर विरजानन्द का ब्र० दयानन्द से पूछा गया प्रश्न ''तुम कौन हो ?'' जब महर्षि दयानन्द किसी सच्चे गुरू की खोज में घूम रहे थे तब स्वामी पूर्णानन्द जी स्वामी विरजानन्द के गुरु थे। उनके बतलाने से ब्र० दयानन्द गुरु विरजानन्द की कुटिया, मथुरा में सन् 1860 में पहुंचे, तब कुटिया बंद थी। ब्र० दयानन्द ने आवाज़ लगाई, ''कृप्या दरवाज़ा खोलो।'' अन्दर से आवाज़ आई कि आप कौन हैं ? तब ब्र० दयानन्द ने कहा, ''मैं यही जानने के लिए आया हूं कि मैं कौन हूं ?'' बस! यह उत्तर क्या था, मानो विश्व कल्याण का सन्देश वाहक था। विरजानन्द जी ने जब यह उत्तर सुना तो वह गद्गद् हो गए और समझ गए कि आज मेरे दरवाज़े पर वही व्यक्ति खड़ा है जिसकी मुझे वर्षों से प्रतीक्षा थी। विरजानन्द जी ने दरवाज़ा खोला, दयानन्द ने गुरु जी के चरण छू कर नमस्ते की और कहा कि मैं ब्र० दयानन्द हूं और आप से विद्या सीखने आया हूँ। गुरु जी का पहला ही प्रश्न था कि तुमने अभी तक क्या-क्या पढ़ा है ? दयानन्द ने उन सब पुस्तकों के नाम बता दिए जो उसने पढ़े थे। तब गुरु जी ने कहा, दयानन्द! ये सब अनार्ष ग्रन्थ हैं पहले तुम इनको यमुना में बहाकर आओ, फिर मैं तुम्हें आर्ष ग्रन्थ पढ़ाऊंगा। दयानन्द एक पक्के गुरुभक्त थे, उसने वैसा ही किया और गुरु विरजानन्द के पास पढ़ने लग गए। उनको हर किस्म से प्रसन्न रखते हुए दयानन्द ने लगभग तीन साल में पूरी विद्या पढ़ ली। गुरु जी को लौंग खाने का चाव था। विद्या प्राप्ति पर दयानन्द कुछ लौंग लेकर, गुरू जी के पास गए और विनम्र निवेदन करते हुए गुरुदक्षिणा के रूप में गुरु जी को लौंग दे दी तब गुरु जी की आंखों में आंसू भर आए और कहा, दयानन्द! मैंने तुझे गुरु दक्षिणा में लौंग लेने के लिए नहीं पढ़ाया, तब दयानन्द ने कहा, ''गुरुवर आप जो आज्ञा दे, आपका शिष्य उसी को देने के लिए तैयार है।'' तब गुरू जी ने रोते हुए कहा कि मैं तो दयानन्द तेरा जीवन ही लेना चाहता हूं। आगे और कहा कि विश्व में अज्ञान, अन्ध विश्वास और पाखण्ड का बोलबाला है। गरीब, असहाय की कोई नहीं सुनता है। सारी जनता अन्धकार में भटक रही है। तुझे वेद-ज्ञान द्वारा इस अन्धकार को मिटाना है और असहाय लोगों का सहारा बनना है। स्वामी दयानन्द ''तथास्तु'' कहकर गुरू जी का आशीर्वाद लेकर कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। यह निर्विदित है कि स्वामी दयानन्द ने कितने दुखों व कष्टों को जीवन भर सहन करते हुए अपने उद्देश्य को प्राप्त किया और अपने गुरु जी को दिए गए वचनों का पालन किया। वह सब 'आप कौन हो' वाक्य का ही परिणाम था। ईश्वर महर्षि दयानन्द की जलाई हुई अग्नि को और अधिक प्रज्जवलित करे, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

सम्पादकीय.....

महर्षि दयानन्द और मानव कल्याण

उन्नीसवीं शताब्दी के महापुरूषों में से महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जी एक थे। उनका सम्पूर्ण जीवन परोपकार और लोकहित में व्यतीत हुआ। अपने परम पूजनीय गुरू विरजानन्द के चरणों में बैठ कर उन्होंने अल्पकाल में ही चारों वेदों और आर्ष ग्रन्थों का मनन किया। गुरू ने विदा करते समय उनसे यही आशा और आकांक्षा की थी कि यदि तुम गुरू ऋण से उऋण होना चाहते हो तो मेरी दक्षिणा यही होगी कि संसार में जो वेद विरूद्ध अज्ञान फैला हुआ है अन्धविश्वास की रूढ़ियों से जो देश जकड़ा हुआ है, और जो भारत पराधीनता की बेड़ियों से ग्रसित है, उसका उद्धार करो। देश को अन्धविश्वास, अज्ञान, अविद्या, आलस्य, प्रमाद और परतन्त्रता से मुक्त करो यही मेरी गुरू दक्षिणा होगी। अपने गुरू की आज्ञा को शिरोधार्य एवं स्वीकार करते हुए वे मनुष्य मात्र की सेवा और उपकार में प्राणपन से जुट गए। देश में अब तक राज रोग दीर्घकाल से चला आ रहा था कि महात्मा सन्यासी साधु, सन्त और योगी लोग अपने आनन्द की धुन में मोक्ष प्राप्ति के लिए दूर के वन प्रदेशों में चल देते थे। उन्हें केवल अपने स्वार्थ और कल्याण की चिन्ता थी, देश धर्म की नहीं। वे प्रकृति मार्ग त्याग कर निवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख होते थे। अपना यश, कीर्ति और महानता प्राप्त करना उनका एकमात्र उद्देश्य तथा लक्ष्य रह गया था। परन्तु हमारे चरित्रनायक इसके अपवाद थे।

स्वामी जी ने अपनी दूरदर्शिता से जनता के सामने वह आदर्श रख दिया तथा अपने उपदेशों में कहा कि जब तक देश पर अविद्या, अन्धकार, निर्धनता, संकट और आपत्ति एवं विपत्ति के बादल छाए हुए हों, तब तक तुम इन बुराईयों की ओर से कब तक नेत्र मूंदे हुए कैसे उदासीन और अलग-थलग रह सकते हो ? जनता जनार्दन के दुःख दूर किये बिना तुम सच्चे परमात्मा के दरबार में कैसे पहुँच सकते हो? महर्षि दयानन्द ने अपने उपदेशों, व्याख्यानों और तथा संवादों के द्वारा लोगों को यही समझाया कि तुम्हारी शक्ति और तुम्हारा ज्ञान अनुभव और बड़प्पन की यही कसौटी है कि तुम दीन दुखियों, पतितों, अभावग्रस्तों और अज्ञानियों के काम आओ, उनके कष्टों और दुखों में सम्मिलित हो जाओ उन्हें कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग और प्रकाश की ओर लाओ। तुम्हारे जीवन का लक्ष्य यही होना चाहिए कि तुम रूढ़ियों पाखण्ड़ों एवं छुआछूत की दीवारों को विध्वंस करके लोगों को वेदों का ज्ञान दो।

कहते हैं कि एक बार ऋषिवर दयानन्द प्रयाग पधारे और वे लोगों को प्रवृत्ति मार्ग में रहकर संसार की भलाई का उपदेश देने लगे। उनके व्याख्यान को सुनकर एक वृद्ध साधु ने महर्षि से कहा- हे स्वामी दयानन्द जी, आप इतने परम योगी, त्यागी महात्मा, सन्यासी और वेदज्ञ होकर भी इस प्रवृत्ति मार्ग के चक्कर में क्यों पड़े हो। उस वयोवृद्ध साधु की बात सुनकर महर्षि दयानन्द थोडा सा मुस्कराए और अगले दिन अपने व्याख्यान में उस साधु को लक्ष्य करके कहा- क्रियात्मक जीवन ही शुभ एवं सात्विक जीवन है। जो लोग पुरूषार्थ नहीं करते और वेद विहित कर्मों को नहीं करते उनका जीवन व्यर्थ और बोझ स्वरूप है। उन्हें वैदिक धर्म का यथार्थ बोध और ज्ञान नहीं हुआ है। आगे फिर उन्होंने कहा कि परोपकार के बिना नर जीवन उच्च एवं सार्थक नहीं कहा जा सकता। जो साधु बनकर गृहस्थों का माल मुफ्त में उड़ाते हैं और जगलों में पड़े रहते हैं उनमें और पशु-पक्षियों में भला क्या अन्तर है? महर्षि दयानन्द जी जहां भी गए वहां वे लोगों को यही उपदेश देते थे कि मन्दिर, मठ, डेरे और गद्दी आदि की ममता छोड़ दो और लोकहित में कुशलतापूर्वक लग जाओ। अपनी इसी वाणी का कृतार्थ करते हुए महर्षि ने अपना अमूल्य और सम्पूर्ण जीवन परोपकारार्थ और मानव कल्याण के लिये अर्पित कर दिया। इतना ही नहीं वरन् वे अपनी समाधि के आनन्द को त्यागकर परोपकार और जनहित में आनन्द लिया करते थे। इतना ही नहीं स्वामी जी अपनी एक पुस्तक भ्रांति निवारण में लिखते हैं कि संसार को लाभ पहुँचाना ही मुझको इष्ट है और साथ ही यही मुझको चक्रवर्ती राज्य के तुल्य आनन्ददायक भी है। स्वामी जी ने महर्षि दधीचि, महाराजा शिवि, राजा रन्तिदेव आदि के उदाहरण जनता के सम्मुख रखे कि इन महानुभावों ने संसार की भलाई के लिए अपना शरीर तक दे डाला था। वे जीवन पर्यन्त परोपकार में लगे रहे और मृत्यु समय अन्त में अपने अनुयायियों को यह आदेश दे गये कि मेरे शरीर की हड्डियां और राख किसी खेत में डाल देना जिससे उस खेत की उपज बढ़ जाए। लोकहित और परोपकार की यह कैसी दिव्य और उदात्त भावना है, हमें महर्षि के जीवन से परोपकार करते रहने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि यह जीवन दूसरों की भलाई में ही काम आना चाहिए। किसी कवि ने यथार्थ ही कहा है-

गिने जायें मुमकिन है सहरा के जर्रे।
समुद्र के कतरे फलक के सितारे।
मगर तेरे अहसां स्वामी दयानन्द।
हैं कैसे सम्भव गिने जाएं सारे।

-प्रेम भारद्वाज सम्पादक एवं महामन्त्री

आर्य सभा अमृतसर द्वारा राशन वितरण समारोह

आर्य सभा अमृतसर के तत्वावधान में गत दिनों माता जगदीश आर्या की अध्यक्षता में भजन संध्या का आयोजन बगीची खुशी राम चौक लक्ष्मणसर अमृतसर में किया गया। जिसमें मुख्यातिथि के रूप में डा. शमशेर सिंह और रश्मि घई जालन्धर से विशेष रूप से शामिल हुऐ। उन्होंने अपने मधुर भजनों से लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया। लोगों ने साक्षी एवं महिला सभा की बहनों के भजनों का भी आनन्द लिया। इस अवसर पर श्री सुरजीत दुखी ने धर्म के विषय पर व्याख्यान दिया। उन्होंने बताया कि सृष्टि में जितने भी मनुष्य हैं, उन सब का एक ही धर्म है। मुख्य वक्ता स्वामी मधुरानन्दा जी सरस्वती ने अपने प्रवचन में वर्णाश्रम की व्याख्या की तथा विशेष तौर पर गृहस्थ आश्रम को सबसे बड़ा बताया।

इस कार्यक्रम में माता जगदीश आर्या ने 51 जरूरतमंद परिवारों को राशन तथा कंबल वितरित किये। उल्लेखनीय है कि आर्य सभा अमृतसर की अध्यक्षा माता हर मास गरीब लोगों में राशन वितरण करती हैं। आर्य समाज लक्ष्मणसर, आर्य समाज पुतलीघर, आर्य समाज रमदास, बेरी गेट, जंडियाला गुरु, माडल टाऊन व नवांकोट की आर्य समाजों के अधिकारी भी इस अवसर पर उपस्थित थे। विशेष रूप से जवाहर लाल, धर्म प्रकाश खन्ना, प्रवीण आर्या, वेद भल्ला, इन्द्रजीत ठुकराल, अशोक मेहता, वन्दना रवि पिपलानी, अनिता, कमलेश, विमला रानी आदि शामिल हुए। श्री अशोक मेहता व माता जगदीश आर्या ने मुख्यातिथियों के साथ मिल कर राशन वितरण किया। यह कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा जिसमें बहुत से लोगों ने हिस्सा लिया।

जीवन में अशान्ति को विवेक से दूर करें

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

आजकल हम किसी व्यक्ति से बातचीत करते हुए यदि उसे टटोलते हैं तो उसमें सुख-शान्ति की कमी अनुभव की जाती है। शायद् ही कोई ऐसा व्यक्ति मिल सके जो पूर्णत: सुखी, शान्त व सन्तुष्ट हो। यदि जीवन में सुख-शान्ति नहीं है तो इसके कारणों को जानकर इन्हें दूर करने के उपाय करना आवश्यक है अन्यथा जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। अत: पहले अशान्ति के कारण को जानने का प्रयास करते हैं। सभी मनुष्यों में इच्छाओं का भण्डार भरा होता है। इच्छायें छोटी-छोटी भी होती हैं और बड़ी भी। इच्छाओं का पूरा न होना ही अशान्ति को जन्म देता है। उदाहरण के लिए एक बच्चा स्कूल जाता है और इण्टरवैल में स्कूल के बच्चे स्कूल के बाहर खड़े हुए खाने की वस्तुए बेचने वालों से खाने की वस्तुएं खरीदते हैं। अब मान लीजिए कि एक बच्चे के माता-पिता उसे स्कूल जाते समय पैसे नहीं देते हैं। जब इण्टरवैल होता है तो अन्य बच्चे तो अपनी पसन्द का खाने का सामान खरीदते हैं परन्तु यह बच्चा पैसे न होने के कारण अपनी इच्छा की वस्तुएं नहीं खरीद पाता। अत: यह इस कारण अशान्त हो जाता है और इसका मानसिक प्रभाव बाद के समय में भी रहता है। इसी प्रकार अन्य छोटी छोटी इच्छायें बच्चों व बड़ों में होती हैं जिनके पूरा न होने पर अशान्ति का सामना करना पड़ता है। अत: इच्छाओं को नियंत्रित करना अशान्ति दूर करने का प्रमुख उपाय है। दूसरा उपाय है कि हम पुरूषार्थ करें और इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लें, तब भी कोई अशान्ति नहीं होगी। पुरूषार्थ करने से जिस क्षण इच्छा की वस्तु प्राप्त होती है, तब कुछ समय के लिए प्रसन्नता का अनुभव होता है। यह नियम व वास्तविकता है कि सभी मनुष्यों की सभी इच्छायें कभी भी पूरी नहीं हो सकती हैं। अत: ज्ञान के नेत्रों से अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना आवश्यक है। इच्छाओं के दो वर्ग तो किए ही जा सकते हैं। एक ऐसी इच्छायें जिनके बिना हमारा सामान्य जीवन व्यतीत करने में बाधा आती है। दूसरी वह इच्छायें जिनके बिना तात्कालिक कोई कठिनाई नहीं होती और यदि वह पूरी न हो तो जीवनयापन में कोई विशेष बाधा नहीं आती है। अत: पहले तत्काल की आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान देना उचित होता है। उसके लिए जितना पुरूषार्थ आवश्यक है वह कर लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी योजनाबद्ध प्रयास करने चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि हम इच्छाओं के दास न बन जायें। अपना मनोबल ऐसा रखना चाहिये कि यदि इच्छा की कोई वस्तु नहीं मिल रही है तब भी हम शान्त रहें एवं उसका किसी प्रकार का कोई दुष्प्रभाव हम व हमारे व्यवहार पर न पड़े। यहां यह भी देखना है कि इच्छायें जिनकी पूर्ति न होने पर अशान्ति होती हैं वह प्राय: खाने-पीने की वस्तुओं को लेकर या स्वास्थय सम्बन्धी कारण अथवा कार, बंगला, आभूषण, धन, सम्पत्ति, सामाजिक स्थिति, लोकैषणा या अपनी सन्तानों व प्रियजनों से जुड़े हुए शिक्षा, रोजगार आदि के प्रश्न हो सकते हैं। अशान्ति दूर करने के कारणों का तो पता चल गया एवं यह भी ज्ञात हो गया कि सत्य-ज्ञान, पुरूषार्थ व इच्छाओं की न्यूनता से अशान्ति को दूर किया जा सकता है।

यह लोकोक्ति है कि दु:ख का कारण अज्ञान होता है। निस्सन्देह यह बात सही है। यदि हमें अपनी अशान्ति वा दु:ख का कारण ज्ञात हो जाये तो हम ज्ञान से उसे जान लेगें और उसे दूर करने के उपाय भी अपने स्वाध्याय व चिन्तन-मनन-विश्लेषण से दूर कर सकते हैं। ज्ञान की प्राप्ति के दो उपाय हैं, पहला है स्वाध्याय व दूसरा विद्वानों के प्रवचन सुनना व उनसे परामर्श करना। स्वाध्याय में प्रमुख ग्रन्थ हैं, महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, योग आदि सभी दर्शन ग्रन्थ, सभी उपनिषदें, मनुस्मृति, बृहति ब्रह्म मेधा आदि ग्रन्थ। ईश्वरोपासना का भी अशान्ति व दु:ख दूर करने में प्रमुख स्थान है। प्रत्येक मनुष्य को प्रात: सायं सन्ध्या एवं यज्ञ अवश्य करने चाहिये। सन्ध्या का तात्पर्य है कि ईश्वर का भलीभांति ध्यान तथा यज्ञ का अर्थ है परोपकार रूपी श्रेष्ठतम कार्य। जो ऐसा नहीं करते वह अपना भावी जीवन दु:खमय बना रहे हैं। इसका कारण है कि हमारा जीवन ईश्वर की देन है। हमारा यह शरीर ईश्वर ने हमें नि:शुल्क दिया है। इस पर उसका अधिकार है। वह हम से इसका कुछ मूल्य मांगता नहीं है। हमें स्वयं निर्णय करना है कि इस देन के लिए हम उसके ऋण से कैसे उऋण हों। हमारे ऋषि-मुनियों ने इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया और इसका हल निकाला है। इसका हल है कि जिस ईश्वर ने हमें यह मानव शरीर दिया, यह संसार एवं इसके सारे पदार्थ हमारे उपयोग, भोग व सुख के लिए बना कर हमें दिए हैं, उसका हमें आभार मानना है और धन्यवाद करना है, यह धन्यवाद किस प्रकार से किया जाये तो वह कहते हैं कि प्रत्येक स्त्री-पुरूष को प्रात: व सायं समय में लगभग एक घंटा ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना ध्यान की विधि से करनी है, यही धन्यवाद का प्रकार है। ऐसा करने से धन्यवाद भी हो जाता है और अन्य लाभ भी होते हैं। अन्य लाभों में मनुष्य के बुरे गुण दूर होकर ईश्वर के गुणों के सदृश हो जाते हैं। उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि वह पहाड़ के समान दु:ख प्राप्त होने पर भी घबराता नहीं है। क्या यह छोटी बात है ? अत: हर आयु के प्रत्येक मनुष्य को नित्य प्रति ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करनी चाहिये।

अब दैनिक यज्ञ जो प्रात: सूर्योदय होने पर व सायं सूर्यास्त से पूर्व करते हैं, पर विचार करते हैं। यज्ञ में हम एक हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्जवलित करते हैं। उसमें घृत व ओषधियों की आहुतियां डालते हैं। अग्नि में घृत व आहुतियां जल कर सूक्ष्म हो जाती है और वायु में सर्वत्र फैल कर अन्य प्राणियों के सुख का कारण बनती है। वेद मंत्रों का भी यज्ञ में उच्चारण किया जाता है जिससे यज्ञ से होने वाले लाभों का पता चलता है और वेद और इसके मन्त्र जो ईश्वरीय ज्ञान है और जो हमें परम्परा से अपने पूर्व ऋषि व विद्वानों से मिला है, उसकी रक्षा होती है जो कि हमारा कर्तव्य व धर्म दोनों है। यदि ऐसा नहीं करेगें तो धर्म का पालन न करने के कारण हमें दु:ख व कष्टों की प्राप्ति होगी जो कि कोई भी प्राणी नहीं चाहता है। यज्ञ करने से रोग भी दूर होते हैं या जहां रोग नहीं हैं अपितु वहां यज्ञ होता है तो वहां भावी समय में रोग होते ही नहीं या यदि कोई होगा तो वह साधारण होगा और शीघ्र उपचार से ठीक हो जायेगा। अत: इस कारण भी प्रत्येक मनुष्य को यज्ञ अवश्य करना चाहिये। यज्ञ करने का एक आवश्यक कारण यह भी है कि मनुष्य जहां रहता है वहां उसके निमित्त से दुर्गन्ध उत्पन्न होता है। इससे वायु व जल आदि में विकार होकर रोग होने प्राणियों के दु:खों की वृद्धि होती है। दुर्गन्ध का कारण हमारा मल-मूत्र, मुख-हस्त-वस्त्र प्रक्षालनादि कार्य, भोजन बनाने से वायु प्रदूषण एवं जिस घर में रहते हैं वहां का वायु घर की दीवारों से रूक जाने के कारण कीटाणु-युक्त होकर प्रदूषित हो जाता है जिसका निवारण भी यज्ञ से होता है। यदि यज्ञ नहीं करेगें तो भावी समय में छोटे-बड़े रोगों की आशंका होगी। अत: यज्ञ का करना वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध हैं। यहां यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि स्वस्थ मनुष्य ही सुखी व शान्त होता है, रोगी या अस्वस्थ मनुष्य अशान्त व दु:खी होता है।

हम समझते हैं कि ईश्वरोपासना, दैनिक यज्ञ, स्वाध्याय, विद्वानों के प्रवचन सुने, सुनने आदि कार्यों के करने से मनुष्य के जीवन की अशान्ति समाप्त हो सकती है और इन कार्यों को करते हुए योगाभ्यास भी करते हुए समाधि अवस्था तक पहुंचकर धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष को भी सिद्ध कर सकते हैं। यह अवस्था पूर्ण सुख-शान्ति व दु:खों की सर्वथा निवृत्ति व समाप्ति की होती है। समाधि सिद्ध होने पर सभी लौकिक सुखों से अधिक ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति होती है। योगी कहता है कि उसने जीवन में जो पाना था, पा लिया। अब कुछ भी पाना शेष नहीं रहा। इस अवस्था में पहुंच कर जो सुख की अनुभूति होती है, उसकी तुलना में सभी सांसारिक व लौकिक सुख हेय व निम्न-स्तरीय होते हैं। अशान्ति जड़ से समाप्त हो जाती है। भावी समय में मृत्यु का भी कोई भय नहीं रहता। ऐसा योगी समाज, देश व विश्व के लिए पूजनीय हो जाता है। आईये जीवन को सुखी व आनन्द से पूर्ण करने के लिए ईश्वरोपासना, यज्ञ, स्वाध्याय, प्रवचन सुनने-सुनाने एवं योगाभ्यास का व्रत लें।

शरीर त्यागते समय जीवात्मा की स्थिति

-ले० महात्मा चैतन्यमुनि महादेव सुन्दर नगर (हि०प्र०)

लगभग प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह जिज्ञासा रहती है कि शरीर त्यागते समय आत्मा की क्या स्थिति रहती होगी। इस सम्बन्ध में कहा गया (बृ० उप०4-3-34 से 38) है-'स्वप्न-स्थान' में क्रीड़ा व विचरण कर, पाप-पुण्य को देखकर आत्मा जिस मार्ग से गया था, उसी मार्ग से 'जागृत-स्थान' में लौट आता है, और जिस प्रकार अच्छे भार से युक्त गाड़ी भार को स्व-स्व स्थानों पर छोड़ती हुई जाती है अथवा अपने गन्तव्य स्थान पर उतार देती है, इसी तरह यह बुद्धि और विवेक से युक्त आत्मा भी सभी पाप-पुण्य को छोड़कर अगले जन्म को धारण करने वाला होता है, जिस प्रकार आम गूलर वा पीपल का फल पकने पर डाली के बन्धन से स्वयं छूट जाता है, वैसे ही जब यह शरीर रोग वा बुढ़ापे के कारण अतिशय कृशता को प्राप्त होता है, तब यह आत्मा समस्त शरीरावयवों से छूटकर जिस मार्ग से इस शरीर-रूपी घर में आया था उसी मार्ग से दूसरा शरीर धारण करने के लिए दौड़ पड़ता है। जिस प्रकार जब कोई राजा किसी प्रान्त में आता है तो पुलिस, न्यायाधीश, सारथि और ग्रामाध्यक्ष उस राजा के प्रति ऐसा कहते हुए कि 'वह आता है, वह आ रहा है'-खाने-पीने की सामग्री तथा महल सजाते हैं, ऐसे ही प्रसिद्ध है, ऐसे ज्ञाता की सब भूत राह देखते रहते हैं और कहते हैं कि यह महान् व्यक्ति आता है, यह महान् पुरूष आ रहा है और जब राजा वापस जाने लगता है तो जिस प्रकार पुलिस, न्यायाधीश, सारथि और ग्रामाध्यक्ष (विदाई देने के लिए) सामने आ जाते हैं। इसी प्रकार अन्त समय में जब यह ऊर्ध्व सांस लेने वाला जीवात्मा शरीर छोड़ने वाला होता है तो समस्त इन्द्रियां इसके सामने आ जाती है और यह अपनी महायात्रा पर चल देता है।'

बृ० उप० (4-4-1,2) के अनुसार-'जब शरीर दुर्बल हो जाता है, मन बेखबरी की हालत में आ जाता है, तब इन्द्रियां इकट्ठी होकर आत्मा के पास पहुंचती हैं। वह उनमें से तेज की मात्रा को जिसके कारण ये काम करती थीं खींच लेता है, और उस तेज को, जो वास्तव में इसी का था, अपने साथ लेकर हृदय-प्रदेश में उतर आता है। चक्षु में बैठा हुआ पुरूष जब अन्दर से बाहर जाता है तब देखता-सुनता है परन्तु जब बाहर से अन्दर को लौट आता है तब देखता-सुनता नहीं, उसे किसी रूप का ज्ञान नहीं रहता, तब वह अरूपज्ञ हो जाता है। अन्तर्मुखी होकर बाह्य विषयों से विमुख हो जाता है, केन्द्रित हो जाता है, अब यह नहीं देखता लोग ऐसा कहते हैं....नहीं सुनता...नहीं स्वाद को जान पा रहा है... मनन और चिन्तन नहीं करता.... नहीं छूता.... वह एकीभूत हो जाता है। उस समय हृदय के अग्र-प्रदेश में, जहां से 'हिता' नामक नाड़ियां हृदय से ऊपर को जाती है, आ जाता है, हृदय का अग्र-प्रदेश आत्मा की ज्योति से प्रकाशित हो उठता है। इस ज्योति के साथ आत्मा चक्षु से, मूर्धा से, या शरीर के किसी अन्य प्रदेश से निष्क्रमण कर देता है। उसके निकलने के साथ-साथ 'प्राण' पीछे-पीछे निकलते हैं, प्राण के निकलने के साथ-साथ 'इन्द्रियां' पीछे-पीछे निकलती है। जीव 'सविज्ञान' हो जाता है अर्थात् उसका सारा खेल उसके सामने आ जाता है। यह विज्ञान उसके साथ-साथ जाता है। विद्या, कर्म और पूर्व-प्रज्ञा ये तीन भी इसके साथ जाते हैं। समस्त जीवात्माओं का निष्क्रमण ऐसे ही होता हो ऐसा नहीं। हालांकि मुख्य रूप से तो निष्क्रमण की यही प्रक्रिया रहती है मगर कठो० उप० (6-16) के अनुसार-'हृदय की एक सौ एक नाड़ियां हैं, उनमें से एक मूर्धा-सिर की ओर निकल गई है। मृत्यु के समय उस नाड़ी से जो ऊपर को उत्क्रमण करता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है, बाकी की अन्य नाड़ियां साधारण व्यक्तियों के उत्क्रमण के समय काम आती है। ब्रह्म-निष्ठ व्यक्ति के प्राण मूर्धा से निकलते है, दूसरों के अन्य मार्गों से।'

इसी प्रकार का विवेचन हमें तैत्तिरीय उप० (शिक्षा०6-1) में भी मिलता है कि-'हृदय के भीतर जो आकाश है, उसमें पुरूष का निवास है। वह पुरूष मनोमय है, अमृत है, हिरण्मय है। तालू के भीतर स्तन की तरह जो लटकता है, वह इन्द्र अर्थात् जीवात्मा की योनि है। यह जीव केशों का जहां अन्त है, वहां तक जीवन पहुंचाता है....वहां तक बरतता है। जिस प्रकार योनि गर्भ के निकलने का मार्ग है, उसी प्रकार मुक्तात्मा के लिए सुषुम्णा नाड़ी, जो काकू में से गुजरकर, कपाल को भेद कर, बालों का जहां अन्त है वहां से जाती है, वह सुषुम्णा नाड़ी आत्मा के शरीर में से निकलने का मार्ग है। छान्दो० उप० (8-6-5,6) में भी लिखा है कि जब जीवात्मा शरीर से निकलता है-'तब साधारण पुरूष का आत्मा तो हृदय की रश्मि-रूप नाड़ियों से किसी एक में से निकल जाता है। ये नाड़ियां आंख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियों को गई हैं। जिस विषय में जीव जीवन भर रमा रहता हो, उसी विषय की नाड़ी से, उसी इन्द्रिय-द्वार से निकल जाता है। ब्रह्म का उपासक 'ओ३म्' का उच्चारण करता हुआ ऊपर को प्रयाण करता है। इधर इसका मनस्तत्व क्षीण होता है, और वह 'आदित्य-लोक' को पहुंच जाता है, सौरी-दशा को प्राप्त हो जाता है। यह सौरी-दशा 'ब्रह्म-लोक' का द्वार है-ब्रह्म-ज्ञानी इस द्वार से निकलकर ब्रह्म-लोक में पहुंच जाते है, दूसरे यहां रूक जाते हैं।' '..... हृदय की एक सौ एक नाड़ियां है, उन में से एक मूर्धा की ओर निकलती है, उस नाड़ी से ऊपर की ओर चढ़ता हुआ ब्रह्मविद् अमृतत्व को प्राप्त करता है, दूसरी नाड़ियों से निकलने में भिन्न-भिन्न गति होती है....'

प्रश्नोपनिषद् (तृतीय प्रश्न-6,7) के अनुसार-'आत्मा का निवास हृदय में है। इस हृदय के साथ मुख्य-मुख्य एक सौ एक नाड़ियां हैं। इनमें से एक-एक से सौ-सौ शाखाएं फूटी हैं। उन शाखाओं से भी एक-एक से बहत्तर-बहत्तर हजार प्रतिशाखाएं फूटी हैं। हृदय से लेकर इस सम्पूर्ण 'रक्त-संचारिणी-संस्थान' में 'व्यान' विचरता है। हृदय से एक नाड़ी ऊर्ध्व देश को अर्थात् मस्तिष्क को जाती है उसमें 'उदान' ऊपर या नीचे की तरफ जीवन-रहता है। पुण्य कार्य करने से हृदय में बैठे हुए आत्मा को 'उदान' 'पुण्य-लोक' में ले जाता है, पाप-कर्म करने से आत्मा को यह 'उदान' 'पाप-लोक' में ले जाता है, दोनों प्रकार के कर्म करने से आत्मा को उदान 'मनुष्य-लोक' में ले जाता है।' इस प्रकार यहां पर भी जीव की तीन ही प्रकार की गतियां बताई गई हैं। जीवात्मा को एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने में कितना समय लगता है, इस सम्बन्ध में भी लोगों के मन में बहुत से भ्रम है। (बृह० उप०4-4-3) कहा गया है-'जैसे तृण-जलायुका-सूंडी तिनके के अन्त पर पहुंचकर, दूसरे तिनके को सहारे के रूप में पकड़कर अपने आप को खींच लेता है, इसी प्रकार यह आत्मा इस शरीर-रूपी तिनके को परे फैंककर, अविद्या को दूर कर, दूसरे शरीर-रूपी तिनके का सहारा लेकर अपने-आप को खींच लेता है।'

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने यजुर्वेद भाष्य (39-6) में लिखा है-'हे मनुष्यो ! इस जीव को शरीर छोड़ने के पहले दिन सूर्य, दूसरे दिन अग्नि, तीसरे दिन वायु, चौथे आदित्य, पांचवें चन्द्रमा, छठे वसन्तादि ऋतु, सातवें मनुष्यादि प्राणी, आठवें बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु, नवमें में प्राण, दशवें में उदान, ग्यारहवें में बिजुली और बारहवें दिन सब दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।' भावार्थ में वे लिखते हैं-'जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्य, प्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं तभी पुण्य-पाप कर्म से सुख-दुःख रूपी फलों को भोगते हैं।' इसी अध्याय के पांचवें मन्त्र का भावार्थ करते हुए वे लिखते हैं-'जब यह जीव शरीर छोड़कर सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता, जहां-तहां प्रवेश करता और इधर-उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है तब ही सुप्रसिद्ध होता है।' इस बात को जरा गहराई से समझने की आवश्यकता है। अल्प-ज्ञान रखने वालों को ऋषियों की बातों में विभिन्नता दिखाई देती है।

(क्रमशः)

पृष्ठ 1 का शेष-अमृतदर्शन का अर्थ.....

आज प्रभातफेरी में ही एक गीत गाया जा रहा था-

वेला अमृत गया, आलसी सो रहा,
बन अभागा साथी सारे जगे, तू न जागा

तभी महात्मा जी ने मंच पर विराजने के पश्चात् मधुरशील जी को अपने गीत प्रस्तुत करने के लिए संकेत किया। गीतों के अनन्तर विवेकशील जी ने सभी श्रोताओं पर दृष्टिपात करते हुए कहा-हमारी अमृत की इस चर्चा का मूल आधार आत्मा ही है, जिसको समझाने के लिए दर्शनों में विशेष प्रयास किया गया है। अत: आइए! इस दृष्टि से दर्शनों की चर्चा करें।

दर्शन की परिभाषा-दर्शन शब्द सामान्य रूप से देखने के अर्थ में प्रसिद्ध है। कभी-कभी विचार, सिद्धान्त के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। दर्शन शब्द हशिर (प्रेक्षणे) धातु से बनता है, जो कि प्र + = अच्छी तरह से, गहराई से ईक्षण = देखने के अर्थ में होता है। द्रष्टा (= देखने वाले) की योग्यता, विद्या, रूचि और स्तर के भेद से देखने में यहां अन्तर सामने आ जाता है, वहां देखने के साधन के अन्तर से भी इस में अन्तर हो जाता है। इस प्रकार देखने की प्रक्रिया-द्रष्टा, दृश्य, देखने के साधन और देखने के बाद बनी राय के भेद से चार रूपों में बंटी हुई है। इसी को दर्शन के शब्दों में प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण और प्रमिति के नाम से स्मरण करते हैं। इन शब्दों से दर्शन शब्द का अर्थ ज्ञान प्रतीत होता है। अंग्रेज़ी भाषा में दर्शन को फिलासफी कहते हैं, जिसका अर्थ है-ज्ञान का अनुराग, प्रेम। वेदान्त और मीमांसा दर्शन ब्रह्म[1] और धर्म[2] की जिज्ञासा (=जानने की इच्छा) से प्रारम्भ होते हैं।

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, इसीलिए इसको मनुष्य, मानव, मनुज कहते हैं[3], जिसका अर्थ है-सोचने वाला। अन्य प्राणियों की अपेक्षा यही मानव की उत्कृष्टता का आधार है, इसी के आधार पर ही मनुष्य ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है। आंख खोलते ही मानव शिशु अपने चारों ओर की वस्तुओं को घूर-घूर कर अपनी आंखों से देखता है। बोलना सीखते ही अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए बालक प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। वह अपने मन में उभरने वाली शंकाओं की निवृत्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है।

जब एक व्यक्ति सांसारिक चिन्ताओं से दूर होकर अपने चारों ओर फैले जगत और अपने बारे में गहराई से सोचता है, तो उसके सामने अनेक प्रश्न उभरते हैं। तब वह सोचता है कि इस जगत का स्वरूप क्या है ? यह कब, कैसे, क्यों बना ? इसका मूलतत्त्व क्या है ? यह अपने आप बना है या इसको किसी ने बनाया है ? यदि किसी ने बनाया है, तो उस कर्त्ता का स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नों के साथ एक और प्रकार की यह प्रश्नमाला भी सामने आती है कि मैं कौन हूं ? अर्थात् मेरा सपना स्वरूप, परिचय कैसा है ? मैं इस रूप में कैसे आया ? मैं अपनी इच्छा से यहां आया हूं या परवश होकर ? मेरा यहां आने का क्या उद्देश्य है ? यह जीवन और सुख दुख क्या है ? इस जगत, इसके कर्त्ता और मेरा आपस में क्या सम्बन्ध है ? इन प्रश्नों के चिन्तन, मनन और विवेचन का नाम ही दर्शन है। संसार में प्रत्येक काल और स्थान के मनीषियों के मन में ऐसे प्रश्न उभरे हैं और उन्होंने इनका उत्तर खोजने का हर सम्भव प्रयास किया है।

प्राचीन भारतीय दर्शनों में यह प्रयास वैदिक वाङमय के आधार पर किया गया है। इसीलिए मुख्य रूप से वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा को वैदिक दर्शन कहते हैं। वेद एवं वैदिक साहित्य को प्रमाण न मानने वाले चार्वाक, जैन, बौद्ध को अवैदिक दर्शन कहा जाता है। पाश्चात्य देशों में प्रादुर्भूत दर्शन को पाश्चात्य या पश्चिमी दर्शन कहा जाता है। प्रत्येक देखने, सोचने और समझाने वाला स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता है। यही क्रम इन दर्शनों में भी अपनाया गया है। अनेकत्र दर्शन शब्द अध्यात्म के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[4] आत्मा सम्बन्धी चर्चा को अध्यात्म कहते हैं। सभी दर्शनों में किसी न किसी रूप में आत्मा की चर्चा आती है। वैसे दर्शनों में परमात्मा, जीवात्मा, जगत, शरीर, धर्म तथा इनसे सम्बन्धित विषयों की चर्चा मिलती है। आत्मा शब्द परमात्मा और जीवात्मा दोनों के लिए आता है। परमात्मा ब्राह्मण्ड में, जीवात्मा पिण्ड (शरीर) में व्याप्त पूर्ण है, अत: एव इन दोनों को पुरुष भी कहते हैं।[5] हमारी इस चर्चा में, अमृत और आत्मा शब्द से जीवात्मा की ही चर्चा की जाएगी क्योंकि उसको अर्थात् अपने आपे को समझने पर ही परमात्मा को समझना सरल और सार्थक हो सकता है। योगदर्शन में भी कैवल्य से आत्मदर्शन का ही संकेत है।[6]

आत्मा की सत्ता

प्रत्येक शरीर में रहने वाले आत्मा की सत्ता पर भारतीय दर्शनों में विशेष विचार किया गया है। इनमें बताया गया है कि चेतन, नित्य, ज्ञानस्वरूप आत्मा शरीर, इन्द्रिय और मन से बिल्कुल भिन्न है। वैशेषिक दर्शन के प्राचीन व्याख्याकार प्रशस्तदेव के 'प्रशस्तपाद' में इस आत्मा का अनेक उदाहरणों के साथ काफी रोचक वर्णन मिलता है। जिससे सिद्ध होता है, कि आत्मा की स्वतन्त्रसत्ता है और वह ही शरीर, इन्द्रिय एवं मन का नियामक तथा अधिष्ठाता है। जैसे कि-

संसार में सर्वत्र देखा जाता है, कि कारीगर अपने औजारों से अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है। औजार अपने आप कोई कार्य नहीं करते, औजार कार्य की सिद्धि में केवल साधन बनते हैं। जिनसे कर्त्ता अपने कार्य को करता है। ऐसे ही शरीर में इन्द्रियों की स्थिति औजारों के ही समान है। शरीर में रहने वाला चेतन आत्मा इन इन्द्रियों को औजारों की तरह बरत कर अपने इच्छित कार्य को साधता है।

जैसे किसी यान का चालक अपनी इच्छा के अनुसार इच्छित दिशा में प्रिय की प्राप्ति और अप्रिय की निवृत्ति के लिए यान को चलाता है। ऐसे ही प्रत्येक देह का चालक आत्मा अपनी इच्छा के अनुरूप अनुकूल की सिद्धि और प्रतिकूल को दूर करने के लिए तद्विषयक अनेक कार्यों के साधनार्थ शरीर रूपी यान को चलाता है।

जैसे एक लुहार अपनी धौंकनी से वायु को लेता और छोड़ता है। ठीक ऐसे ही शरीर में रहने वाला नित्य आत्मा अपनी नासिका रूपी भस्त्रा से बाहर का स्वच्छ वायु लेता है और अन्दर के अस्वच्छ वायु को बाहर निकालता है।

जैसे कोई अपने यन्त्र (मशीन) को प्रयोग में लाता है और वह कभी किसी पुर्जे को कसता है तथा दूसरे को ढीला करता है और कभी किसी पुर्जे को आवश्यकता के अनुसार बर्तता है। ऐसे ही शरीर में रहने वाला उसका मालिक कभी अपनी आंखों को खोलने और बन्द करने का कार्य करता है और कभी कान का बर्ताव करता है। जैसे एक गृह का स्वामी अपने गृह की अपेक्षित मुरम्मत एवं बढ़ौत्तरी करता है, ठीक ऐसे ही शरीर का स्वामी अपने शरीर रूपी गृह की तोड़-फोड़ (क्षत-विक्षत) की पूर्ति और वृद्धि के लिए सदा प्रयत्न करता है।

जैसे एक बालक एक स्थान पर बैठा हुआ अपने खिलौनों को इधर-उधर भेजता है। ऐसे ही शरीर का प्रेरक आत्मा अपने मन द्वारा इन्द्रियों को इच्छित कार्यों में लगाता है। वह कभी हाथ को और कभी आंख को गति देता है।

जैसे कोई चौबारे में बैठा हुआ कभी किसी खिड़की से देखता है, कभी किसी से। फिर एक खिड़की से देखे हुए को दूसरे खिड़की से पुकारता है। ऐसे ही शरीर में रहने वाला ज्ञानी आत्मा पहले आंख से किसी फल या मिठाई को देखता है और फिर साथ ही उसकी जीभ में पानी भर आता है। इस सोदाहरण चर्चा से सिद्ध होता है कि इन दोनों इन्द्रियों से अलग कोई एक ही आत्मा है। तभी तो अपने देखे के अनुसार उसकी जीभ में पानी भर आता है, अन्यथा एक के देखे की दूसरे को याद नहीं आती। अत: यह एक सर्वसिद्ध बात है कि हम सबके शरीर, इन्द्रिय और मन का अधिष्ठाता, नेता, संचालक एक चेतन आत्मा है। जो कि नित्य और सबका अलग-अलग है।

ऐसे ही न्याय, सांख्य, योग और मीमांसा दर्शन के शाबर भाष्य मे आत्मा की सत्ता को समझाने का सुन्दर प्रयास किया गया है। आत्मा की सत्ता स्पष्ट हो जाने पर स्वाभाविक रूपेण एक प्रश्न सामने आता है कि आत्मा का स्वरूप कैसा है ?

1. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा 1, 1, 1
2. अथातो धर्म जिज्ञासा 1, 1, 1
3. मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति , मनस्यमानेन सृष्टा:, मनस्यति: पुन मनस्व भावे, मनोरपत्यं मनुषो वा निरुक्त 3, 2
4. दृश्यते यथार्थतया ज्ञायते पदार्थोऽनेन करणे दृश्यते-आत्मा-अनेन-इ दर्शनम् आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानात्-शुक्र नीति 1,158
5. पुरुष: पुरिषाद:, पुरिशय:, पूरयते र्वा पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य- 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् निरुक्त 2, 1'
6. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव: कैवल्यम्, स्वरूपप्रतिष्ठा व चितिशक्तिरिति 4, 34

नव कुण्डीय गायत्री महायज्ञ सम्पन्न

19 अप्रैल 2013 दिन शुक्रवार को आर्य समाज मन्दिर समराला ज़िला लुधियाना में नव दिवसीय नव कुण्डीय गायत्री महायज्ञ का समापन समारोह श्रद्धापूर्वक मनाया गया। यज्ञ के ब्रह्मा वैदिक विद्वान पंडित राजेन्द्र व्रत शास्त्री (मधुर भजनोपदेशक) थे। यह गायत्री महायज्ञ 11 अप्रैल आर्य समाज स्थापना दिवस व नव विक्रमी संवत्सर (2070) से लेकर 19 अप्रैल श्री राम नवमी तक किया गया।

श्री राम नवमी को प्रात: 6.30 बजे से 7.30 बजे तक यज्ञ किया गया तत्पश्चात् 7.30 से 8.30 बजे तक भजन प्रवचन हुआ। अन्त में शान्ति पाठ तथा जयघोष से इस यज्ञ को सम्पन्न किया गया और प्रात: राश ऋषि प्रसाद वितरण किया गया। इस अवसर पर यज्ञ के प्रेमी-प्रधान श्री राजकुमार ढण्ड मन्त्री श्री अम्बरेश कुमार आर्य, श्री सोम प्रकाश आर्य, श्री अमरनाथ टागरा, जयदीप, रमन कुमार, श्री राम जी आदि समस्त आर्य सज्जन, स्त्री आर्य समाज, पतंजलि योग समिति व नवयुवकों ने भाग लिया। **-मन्त्री आर्य समाज समराला**

आर्य समाज गोनियाना मण्डी (ज़िला बठिण्डा) का वार्षिक चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज गोनियाना मण्डी ज़िला बठिण्डा का वार्षिक चुनाव सर्वसम्मति से निम्न प्रकार हुआ।

संरक्षक तथा मुख्य सलाहकार महाशय चिरंजी लाल जी, प्रधान श्री तरसेम कुमार आर्य, मंत्री अशोक कुमार, उप-मन्त्री एवं कोषाध्यक्ष श्री राजेश कुमार, वरिष्ठ उप-प्रधान श्री विजय कुमार, उप-प्रधान श्री सतीश कुमार, लेखा निरीक्षक श्री जसवन्त राय जी, सभा के चुनाव के लिए प्रतिनिधि श्री तरसेम आर्य। **-तरसेम कुमार आर्य प्रधान आर्य समाज**

आर्य समाज बंगा का चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज बंगा ज़िला नवांशहर का वर्ष 2013-14 के लिए चुनाव सर्वसम्मति से किया गया जिसमें निम्न पदाधिकारी चुने गए। श्री शादी लाल जी महेन्द्रु प्रधान, श्री विनोद शर्मा उप-प्रधान, श्री नरेन्द्र गोगना मंत्री, पुस्तकाध्यक्ष श्री राम भरोसे मौर्य, कोषाध्यक्ष श्री श्याम लाल आर्य। अन्तरंग सदस्य श्री अशोक शर्मा, श्री मनोहर लाल शर्मा, श्री राकेश सूरी, श्री राकेश बतरा, श्री अशोक महेन्द्रु, श्री मंजीत अरोड़ा।

-नरेन्द्र गोगना मंत्री आर्य समाज

प्रवेश सूचना

आधुनिक सुविधाओं सहित आवासीय विद्यालय (10+2) गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय-विभाग हरिद्वार में सत्र 2013-14 हेतु कक्षा 01 से 9 व 11 तक प्रवेश प्रारम्भ।

वैदिक संस्कारों पर आधारित एन. सी. ई. आर. टी. पाठ्यक्रम सभी आधुनिक विषयों के साथ छात्रों के सर्वांगीण विकास की शिक्षण संस्था।

विज्ञान वर्ग में P.C.M एवं P.C.B एवं वाणिज्य वर्ग तथा कला वर्ग हिन्दी एवं अंग्रेज़ी माध्यम

प्रवेश तिथि-01 जुलाई 2013 से 20 जुलाई 2013 तक

आधुनिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

सम्पर्क सूत्र-9927016872, 9412025930, 9412024149, 9690679382, 992708437

वेबसाइट-www.gurukulkangrividyalaya.org

-सहायक मुख्याधिष्ठाता

चुनाव सूचना

आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना का वार्षिक अधिवेशन 28 अप्रैल 2013 को सम्पन्न हुआ जिसमें श्री विजय सरीन जी को सर्वसम्मति से पुन: प्रधान निर्वाचित किया गया। अन्य अधिकारी एवं अन्तरंग सदस्य चुनने के लिये उनको सर्वसम्मति से अधिकार दिया गया। उन्होंने इस अधिकार का प्रयोग करते हुये निम्न पदाधिकारी तथा अन्तरंग सदस्यों का चयन किया। प्रधान श्री विजय सरीन, उप प्रधान श्री बृजमोहन अरोडा एवं राजेन्द्र बेरी, महामंत्री श्री अनिल कुमार, मंत्री श्री बृजेश पुरी, कोषाध्यक्ष श्री राजीव गुप्ता, पुस्तकाध्यक्ष श्रीमती वीना गुलाटी, अन्तरंग सदस्य श्री ओम प्रकाश गुप्ता, श्री हरबंस लाल सहगल, श्रीमती अनु गुप्ता, श्रीमती मीरा सरीन। विशेष आमंत्रित सदस्य तीन होंगे जिनका निश्चय प्रधान एवं महामंत्री करेंगे। श्री कृष्ण चंद जी झांझी लेखानिरीक्षक नियत हुये। **-अनिल कुमार महामंत्री आर्य समाज**

आर्य समाज मेन बाज़ार दीनानगर में नव विक्रमी सम्वत् और आर्य समाज स्थापना दिवस का समापन समारोह

आर्य समाज मेन बाज़ार दीनानगर में नव विक्रमी सम्वत् और आर्य समाज स्थापना दिवस व राम नवमी का पर्व दिनांक 14-4-13 से 19-4-13 तक बड़े धूमधाम और उत्साह के साथ मनाया गया। प्रतिदिन प्रात: गायत्री महायज्ञ होता रहा। गायत्री महायज्ञ की पूर्णाहुति दिनांक 19-4-13 को 10.30 बजे हुई महायज्ञ के ब्रह्मा आचार्य नारायण सिंह जी आर्य महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब थे। आचार्य जी का बहुत ही प्रभावशाली प्रवचन हुआ। उन्होंने वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति और आर्य समाज से जुड़ने का आग्रह किया। श्री राम चन्द्र जी के आदर्शों को अपनाने के लिए कहा। स्वामी दयानन्द सरस्वती के हमारे ऊपर बहुत ही अहसान है। उन्होंने ही हमें सच्चा मार्ग दिखलाया। श्री जतिन्द्र शास्त्री जी ने अपने मधुर भजनों से सभी को मन्त्रमुग्ध किया। स्वामी सदानन्द जी का सबको आशीर्वाद प्राप्त हुआ और उन्हीं के करकमलों से ध्वजारोहण हुआ।

गायत्री महायज्ञ में प्रिंसीपल गन्धर्व राज महाजन, आर्य समाज के प्रधान धर्मेन्द्र गुप्ता, विनय ओहरी, राधे श्याम महाजन, रणजीत शर्मा, अरुण विज, अनिल गुप्ता, अरुण गुप्ता, अभिषेक गुप्ता, हितेष, सौरभ, ईश्वर मल्ल, राकेश ओहरी, रिंकू बन्धन, विक्रम बन्धन, रजिन्द्र महाजन, प्रेम भारत, बूटा राम, सुषमा, चितरंजन ओहरी, सतपाल शर्मा, युधिष्ठर महाजन, सतीश महाजन, अश्वनी महाजन, रजनीश ओहरी, बलराज राणा आदि महानुभाव यज्ञमान बने। यज्ञ के बाद जलपान का प्रबन्ध किया था। जलपान के बाद 11.00 बजे आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें प्रिंसीपल निर्मल पांधी एस. एल. एम. कालेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष श्रीमती अनीता शर्मा, प्रिंसीपल गन्धर्व राज महाजन आदि ने सम्बोधित किया। इस कार्यक्रम में आर्य सीनियर सैकंडरी स्कूल दीनानगर और एस. एस. एम. स्कूल झंगी के विद्यार्थियों ने भी अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

इस कार्यक्रम में एस. एस. एम. स्कूल झंगी, आर्य सीनियर सैकंडरी स्कूल दीनानगर, सुमित्रा देवी सीनियर सैकंडरी स्कूल दीनानगर के प्रिंसीपल एवं स्टाफ, रघुनाथ शास्त्री, मनोरंजन ओहरी, मनोहर सैन ओहरी, बाबा लाल जी, विद्यारत्न सरदारी लाल, मास्टर रघुवीर सैनी, रमेश महाजन, सुभाष जी, रछपाल सिंह, बाल कृष्ण, आर्य समाज गुरदासपुर, धारीवाल, पठानकोट, अंबाला, बटाला के अधिकारीगण, तिलकराज प्रधान ज़िला केन्द्रीय सभा एवं गुरवचन आर्य, दयानन्द मठ दीनानगर से ब्रह्मचारी व बहुत सी मातृशक्ति भी उपस्थित थी। मंच का संचालन आर्य समाज के महामंत्री योगेन्द्र पाल गुप्ता ने किया। अन्त में प्रधान धर्मेन्द्र गुप्ता जी सभी आए हुए महानुभावों का धन्यवाद किया। शान्तिपाठ के बाद ऋषि लंगर का आयोजन भी किया गया। कार्यक्रम बहुत ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। आर्य समाज के पुरोहित पंडित कैलाश शर्मा का योगदान भी सराहनीय रहा।

आर्य समाज फिरोजपुर छावनी में वेद प्रचार

आर्य समाज फिरोजपुर छावनी सीमावर्ती क्षेत्रों में वैदिक संस्कृति के प्रचार प्रसार का प्रमुख केन्द्र है। आर्य समाज का इतिहास आर्य जगत में विशेष स्थान रखता है। यह आर्य समाज के ऋषि के आधार स्तम्भों की प्रमुख प्रचार स्थली रही है। इस नगर को जग प्रसिद्ध मानवता को समर्पित महर्षि देव दयानन्द जी के चरणों से पवित्र होने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनके अनगिनत शिष्यों ने इस समाज में रहकर वैदिक प्रचार प्रसार कर स्वजीवन को धन्य बनाया है। इस समाज में वर्षभर सभी पर्व तथा त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाए गए। वार्षिकोत्सव व गायत्री महायज्ञ भी बड़ी श्रद्धा भक्ति से सम्पन्न हुए। समय-समय पर वैदिक विद्वानों के भजन एवं प्रवचन हुए।

समाज की समुचित उन्नति में सर्वश्री स्वामी मेघानंद जी सरस्वती मुम्बई वाले, श्री चन्द्रदास जी आर्य महाप्रबन्धक बी. एस. एन. एल., श्री अजय चावला परिवार, विजय आनन्द प्रधान आर्य समाज, राजेन्द्र पाल सोनी, विजय पाल आनन्द, जितेन्द्र गन्नोता, मल्होत्रा परिवार, संजीव अग्रवाल, विपिन मित्तल, कुलदीप वर्मा आदि कई समाज हित चिन्तकों का इस आर्य समाज को सहयोग मिला।

-मनोज आर्य महामंत्री आर्य समाज

इन्द्रियरूपी अश्व हमें लक्ष्य प्राप्त करावें

-डा. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी

मानव की इन्द्रियां मानव को अनेक पतन से भरे मार्ग पर ले जाकर उस का जीवन ही नष्ट कर देती हैं। जो मानव इन को अपने वश में कर लेता है, वह उत्तम साथी की भान्ति अपने गन्तव्य पर पहुंचने में सफल होता है। इस सूक्त का यह मन्त्र इस प्रकार का ही उपदेश करते हुए कह रहा है कि

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा॥ ऋग्वेद १.६.२॥

इस मन्त्र में छः बातों पर उपदेश देते हुए कहा गया है कि :-

१. जो व्यक्ति अपने मन को सूर्यादि, ईश्वर के बनाए हुए ज्ञान के स्त्रोतों की प्राप्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित कर इन के विज्ञानों को समझने का प्रयास करते हैं, वह अपनी इन्द्रियों को बड़ी सरलता से अपने वश में करने वाले होते हैं, यह लोग इन्द्रियों पर इस प्रकार काबू कर लेते हैं, जिस प्रकार एक सफ़ल सारथि अपने रथ के घोड़ों को अपने वश में कर लेता है। ऐसे लोग ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय रुपी घोड़ों को अपने शरीर रुपी रथ में सजाते हैं, जोड़ते हैं।

ऊपर की पंक्तियों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि मानव जीवन के दो महत्वपूर्ण अंग होते हैं।

(क) ज्ञानेन्द्रियां (ख) कर्मेन्द्रियां

इन दोनों प्रकार की इन्द्रियों पर उत्तम पकड़ बनाए रखने वाला व्यक्ति ही अपने जीवन के उद्देश्यों को सफलता से प्राप्त कर सकता है। इन दोनों को वश में रखने के लिए उसे यत्न करना होता है, परिश्रम करना होता है, पुरुषार्थ करना होता है, मेहनत करना होता है। ज्ञानेन्द्रियां उसे विश्व का सब ज्ञान देती हैं, उसे बताती हैं कि क्या तेरे हित में है तथा क्या नहीं ? क्या करना है तथा क्या नहीं ? जब भले बुरे का ज्ञान होता है तो ही कर्म सक्रिय होकर इस पर कार्य कर इसे अपना बना पाता है किन्तु यह प्राप्ति होती उसको ही है जो निरन्तर पुरुषार्थ में लगा रहता है। जो आलसी बनकर खटिया में पड़ा रहता है, उसे कुछ प्राप्त नहीं होता बल्कि जो उसके पास है वह भी धीरे धीरे समाप्त हो जाता है, लुट जाता है। अतः ऐसे व्यक्ति अपनी इन्द्रिय रुपी घोड़ों को कभी भी चरने के लिए खुला नहीं छोड़ते इन्हें सदा ही कर्म में लगाए रखते हैं, कर्म में व्यस्त रखते हैं। अतः इन्द्रियां कभी भी विषयों में ही चरती रहें, विचरण करती रहें, ऐसा सम्भव नहीं हो पाता।

२. जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर काबू रखते हैं, अंकुश लगाए रखते हैं, उनकी यह इन्द्रियां सदा प्रभु में ही विचरण करती हैं, प्रभु के बताए मार्ग पर ही चलती हैं तथा उसके इंगित पर ही कार्य करती हैं, कर्म करती हैं। मानव का अन्तिम लक्ष्य उस परम पिता की प्राप्ति ही होता है तथा उसकी यह इन्द्रियां उसे यह लक्ष्य पाने में सफल करती हैं किन्तु केवल तब जब उनकी लगाम को मजबूती से पकड़ रखा हो। अन्यथा यह उसे भटका देती हैं। अतः प्रभु में विचरण करने के लिए इन्द्रियों को काबू में कर आगे बढ़ना होता है।

३. मानव के यह इन्द्रियरुप घोड़े विशिष्ट परिग्रह से युक्त होते हैं। यह एक निश्चित तथा निर्धारित लक्ष्य को, ध्येय को लेकर चलते हैं, आगे बढ़ते हैं तथा तब तक चलते चले जाते हैं, जब तक की गन्तव्य को प्राप्त नहीं कर लेते। जब एक लक्ष्य निश्चित है तो मार्ग भटकने का इन्द्रियों को दूसरी ओर लगाने का तो इन के पास समय ही नहीं होता। सीधी स्पाट सड़क पर जाना होता है, मार्ग में कहीं मुड़ना नहीं होता, इस कारण मार्ग कैसे भटक जावेंगे, ऐसा तो उसके लिए सम्भव ही नहीं होता। अतः एक निर्धारित उद्देश्य को लेकर चलने वाली यह इन्द्रियां गन्तव्य पर जाकर ही सांस लेती है तथा निश्चित रुप से इसे पा लेती हैं।

४. इनका उद्देश्य एक विशिष्ट उद्देश्य होता है। पूर्व निर्धारित उद्देश्य को इन इन्द्रियों ने प्राप्त करना होता है। इस निर्धारित उद्देश्य के कारण ये तेजस्वी होकर तीव्र गति से चल कर इसे पाने के लिए पुरुषार्थ करती हैं, प्रयास करती हैं। तेजस्वी हो कर कार्य में लग जाती हैं। इन का रक्त वर्ण यह स्पष्ट कर रहा होता है कि यह तेजस्वी है, यह कर्मशील हैं, यह अपने निर्धारित गन्तव्य को पाने के लिए यत्नशील हैं। इसकी ही आभा, इसकी ही तेजस्विता उनके ललाट में दिखाई देती हैं।

५. जब एक निर्धारित लक्ष्य होता है तो मार्ग की बाधाएं इनके मार्ग को रोक नहीं पातीं। इनमें इतनी शक्ति आ जाती है कि मार्ग के सब शत्रुओं को, मार्ग की सब बाधाओं को यह बड़ी सरलता से नष्ट कर देती हैं। किसी प्रकार का विघ्न, किसी प्रकार की मार्ग की बाधा तथा किसी प्रकार का मार्ग का शत्रु इसके सामने आते ही नष्ट हो जाते हैं, मारे जाते हैं, दूर हो जाते हैं। इस प्रकार यह सदा प्रगति की ओर, उन्नति की ओर अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर निरन्तर बढ़ते ही चले जाते हैं।

६. इस प्रकार वश में की गई इन्द्रियां जब एक निश्चित लक्ष्य को पाने के लिए अपने आगे चलने वाले मानव की अनुगामी होती हैं तो वह निरन्तर उसे आगे तथा आगे ही ले जाते हुए, उसे लक्ष्य तक ले जाती है। यह बड़ी सफलता से उसे लक्ष्य तक ले जाने वाली होती हैं। जब मानव में अग्रगति की, आगे बढ़ने की, सफलता पाने की, विजयी होने की भावना है तो फिर उसकी इन्द्रियां भी उसके पीछे चलने वाली होती हैं। ऐसे मानव की इन्द्रियां विषयों में भटक ही नहीं सकतीं बल्कि निरन्तर उसके पीछे चलते हुए आगे की ओर बढ़ती ही चली जाती हैं। अन्त में उसे सफलता दिलाने वाली बनती हैं।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।